International Journal of Jyotish Research: 2018; 3(2): 05-08

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2018; 3(2): 05-08
© 2018 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 02-05-2018
Accepted: 03-06-2018

डॉ. जितेन्द्र कुमार दुबे
श्रीमतीलाडदेवीशर्मा
पञ्चोलीआदर्शसंस्कृतमहाविद्यालय
बरून्दनीए भीलवाड़ाए राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. जितेन्द्र कुमार दुबे
श्रीमतीलाडदेवीशर्मा
पञ्चोलीआदर्शसंस्कृतमहाविद्यालय
बरून्दनीए भीलवाड़ाए राजस्थान, भारत

संस्कृतवाङमये-वर्णित-वास्तुशास्त्रस्य उपयोगिता

डॉ. जितेन्द्र कुमार दुबे

प्रस्तावना

यह सर्व विदित है कि प्राणिमात्र सुख तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने योग्य निवास की व्यवस्था करता है, उन सब में मानव बुध्दिमान प्राणी है, जिसका जीवन क्रम वेदशास्त्रों के निर्देशानुसार अनुशासित है। ज्यौतिषशास्त्र का अन्यतम अंग वास्तुविद्या है, इसका ज्ञान बृहत्संहिता, मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, रत्नमाला, गृहभूषण, वास्तुमाला, वास्तुप्रबन्ध आदि ग्रन्थों में विकीर्ण है। यथा--

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृणमये दशसङ्गुणम् ।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेनन्तं फलं गृहे ॥[1]

पर्णशाला बनाने से कोटि गुण, मिट्टी का घर बनाने से दस करोड़ गुण, ईट का घर बनाने से सौ करोड़ गुण और पत्थर व्दारा घर बनाने से अनन्त गुण पुण्य की प्राप्ति होती है।क्योंकि वास्तु के सिद्धांतों का परिपालन करके बनाए गए मकान में रहने वाले प्राणी सुख, शांति, स्वास्थ्य, समृद्धि इत्यादि प्राप्त करते हैं । जबकि वास्तु के सिद्धांतों के विपरीत बनाए गए मकान में रहने वाले देर-सवेर इन्हीं बातों के प्रति प्रतिकूलता का अनुभव करते हैं। एवं कष्टप्रद जीवन व्यतीत करते हैं, कई सज्जनों के मन में यह शंका होती है कि वास्तु विषय का अधिकतम उपयोग आर्थिक दृष्टिकोण से संपन्न वर्ग ही करते हैं। मध्यम वर्ग के लिए इस विषय का उपयोग कम होता है नि:संदेह यह अवधारणा गलत है। वास्तु विषय किसी वर्ग या जाति विशेष के लिए नहीं है । बल्कि वास्तु विज्ञान संपूर्ण मानव जाति के लिए प्रकृति की उर्जा शक्तियों का एक अनुपम वरदान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणों का लाभ अमीर गरीब एवं किसी जाति विशेष का भेदभाव किए बिना सभी को समान रुप से प्रभावित करते हैं । उसी प्रकार वास्तु के पंच तत्वों का उचित संतुलन सभी को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से प्रभावित करता है। यह व्यक्ति की स्वयं की इच्छा शक्ति की योग्यता पर निर्भर करता है। कि वास्तविक ज्ञान के इस अनमोल खजाने से वह कितना ज्ञान अर्जित करके लाभांवित हो सकता है। वास्तुकला का सीधा संबंध प्राचीन शिल्प शास्त्रीय कला से है । प्राचीन शिल्प शास्त्रियों ने भवन निर्माण-"आवास वसति विज्ञानम्" के संबंध में ही वास्तु शब्द को लक्षित किया था । संभवतया वास्तु का संबंध पहले राष्ट्र से फिर नगर से ग्राम से तत्पश्चात स्थान विशेष से है। अतः गांव बसेगा तो नगर बसेगा गांव बसेगा तो मानव बसेगा घरों भवनों के निर्माण योग्य स्थान का ही दूसरा नाम नगर है।इसलिए नगर निवेश योजना वास्तु शास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रमुख अंग है साथ ही प्रधान विषय भी है।वैसे तो गृह निर्माण हैतु के बारे में निम्न प्रकार का वचन प्राप्त होता है।

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम ।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधा: श्रीविश्वकर्मादय:॥[2]

इस शास्त्र वचन के अनुसार स्त्री, पुत्र, मित्रादिकों के भोग और सौख्य को पैदा करने वाला, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, जीवों का निवास स्थान, सुखों का प्रधान स्थान, शीत (जाड़ा) गर्मी, बरसात आदि के दु:खो को दूर करने वाला, वापी, कूपादि, जलाशय और देवालयों के सम्पूर्ण पुण्यो को देने वाला "गृह" ही है, ऐसा विश्वकर्मा आदि पूर्वाचार्यों ने कहा है ।छोटे-छोटे कीट पतंग से लेकर मनुष्य पर्यन्त प्रत्येक प्राणी प्रकृति के अटूट नियमों से आबध्द होकर दु:सह दु:ख की निबृति और आत्यन्तिक सुख की उपलब्धि के लिए निरन्तर चेष्टा करते और नाना भाँति की सुखसामग्रियों के संग्रह में संलग्न रहते हैं। भवन की उन सामग्रियों में अपना एक प्रधान स्थान रखता है। इस कारण जीव मात्र अपने-अपने अनुरूप निवास-स्थान बनाकर अपना सुखमय जीवन निर्वाह करते हुए दीखते हैं परन्तु मनुष्य जाति सर्वश्रेष्ठ जाति है, अतएव इसका निवास स्थान भी सर्वश्रेष्ठ और निरापद होना अनिवार्य है ।

अन्य प्राणी तो केवल अपने परिश्रम से ही अपना-अपना निवास स्थान (घोसले, मान, बिल इत्यादि) तैयार कर लेते हैं। किन्तु मनुष्य जाति को अपना भवन निर्माण करने के लिए देश, काल और परिस्थिति पर पूर्णध्यान देते हुए तन, मन, धन, जन इत्यादि सभी को इति कर्तब्यता का रूप देना पड़ता है । कुछ पालतु जीव भी हैं, जिंके रहने के लिए मनुष्य को ही निवास स्थान बनाने पड़ते हैं। जैसे हाथी, घोड़ा, गौ, ऊट, गधा, खच्चर इत्यादि । मनुष्य जाति के लिए यह(भवन) एक स्थायी सम्पत्ति भी समझी जाती है । इसलिए इसके निर्माण के पूर्व, तैयार हो जाने पर शीघ्र ही विकृत न हो जाय, सूर्य के अंशुजालों के प्रवेश न होने पर अधिक शीड़ रहने आदि कारणों से सदा स्वमियों के स्वस्थ्य विकृत न हो जाय इत्यादि बातों पर पूर्णतया ध्यान रखना आवश्यक होता है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने इस भवन निर्माण विषय को धर्म का रूप दिया है। यथा--

गृहस्थस्य क्रिया: सर्वा न सिध्दय् न्ति गृहं विना ।
यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयौ ब्रुवे ॥
परगेहे कृता: सर्वा: श्रौतस्मार्तक्रिया: शुभा: ।
निष्फला: स्युर्यतस्तासां भूमीश: फलमश्नुते ॥[3]

गृहस्थ के सम्पूर्ण श्रौत-स्मार्त कर्म बिना गृह के सिध्द नही होते, इसलिए गृहारम्भ और गृहप्रवेव को कराया जाता है। दुसरे के घर में रहकर की हुई श्रौत (वैदिक) और स्मार्त (स्मृति-प्रतिपादित) समस्त क्रियायें निष्फल हो जाती हैं, कयोंकि उनका फल मकान मालिक को प्राप्त होता है। चूँकि भवन का मूल आधार भूमी है, अत: सर्वप्रथम हम भूमि परीक्षण के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें।

भूगर्ते जलपूरिते$त्र विधिवद् द्रोणादिपुष्पं क्षिपेत् ।
प्रादक्षिण्यगति: शुभं सुमनसां यद्यन्यथा निन्दितम् ।
पुष्पे दिक्ष्वथ संस्थिते सति शुभं कोणेषु चेन्निन्दितं।
ज्ञात्वेत्यादिशुभाशुभान्यथ समीकुर्यात् क्षमां सूक्ष्मधी:॥[4]

इसप्रकार आवास के लिए ग्राह्य भूमि के लिए वाराहमिहिर का मत है कि निश्चित क्षेत्र के बीच एक हाथ चौड़ा, लम्बा और गहरा गढ्ढा खोदकर निकाली गयी मिट्टी से पुन: उसे भरें। इस दौरान देखें कि गढ्ढा पूरा भर जाय और यदि मिट्टी बच जाय तो उस भूमि को सर्वथा उत्तम माने । बराबर होने पर सम, और मिट्टी के घट जाने पर वह स्थान अशुभकारी होगा, ऐसा जानें । एक अन्य विधि के अनुसार गढ्ढे में पानी भरें और समानगति से सौ कदम जायें, तथा लौटकर देखें कि यदि थोड़ा बहुत भी पानी बचता है, तो वह भूमि धन्य है, अथवा भूमि से निकली मिट्टी यदि चौंसठ आढ़क हो तो भी शुभ जानना चाहिए।

इसी प्रसंग में ईशान शिवगुरूदेव का मत है किउस गढ्ढे को पानी से भरें और सौ पद जाकर पुन: लौटकर देखें कि यदि पानी भरा हुआ हो तो भूमि को उत्तम जानें । यदि पानी कुछ कम हो तो मध्यम और यदि बिल्कुल कम हो जाय तो उस भूमि को अधम समझना चाहिए।

वाराह ने मिट्टी की परीक्षा की तीसरी विधि बताते हुए कहा है किचार बत्तियों वाला दीपक तैयार कर उसे मिट्टी के कच्चे बर्तन में

रखें । उक्त बत्तियों के उत्तरादि क्रम से ब्राह्मणादि वर्णों की कल्पना करें। इस वर्तन को एक गढ्ढे में डालें और देखें की जिस दिशा की

बत्ती देर तक जलती रहे, उस उस दिशा के वर्ण के लिए (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,) वह भूमि शुभ मानी जाती है।

चौथी परीक्षा विधि के अन्तर्गत सायंकाल ब्राह्मणादि वर्ण-तुल्य पुष्पों यथा-- श्वेत, लाल, पीत, व काले फूलों को लेकर गढ्ढे में डाल दें । दूसरे दिन सुबह उन पुष्पों को निकालकर देखें कि जिस वर्ण का पुष्प मुरझाया नहीं हो, उस वर्ण के लिए वह भूमि उत्तम होती है, अथवा अपना मन जहाँ पर ही रम जाय, वहाँ निवास कर लेना चाहिए।

"मनुष्यालयचन्द्रिका" में कहा गया है कि चयनित भूमि के गढ्ढे में जलभरकर उसमें द्रोण (एक प्रकार का श्वेत पुष्प देने वाला वृक्ष) आदि के पुष्प डालें और पर्यवेक्षण करें। यदि वह प्रदक्षिण क्रमानुसार तैरता हो तो भूमि शुभ होती है। अर्थात गढ्ढे के जल में पुष्प का पूर्व से दक्षिण की ओर घुमना शुभ है। विपरीतक्रम में घुमना अशुभ माना जाता है। अत: वह भूमि निन्दत होती है। यदि उक्त तैरता हुआ पुष्प पूर्वादि मुख्य दिशाओं में स्थिर हो जाय तो शुभ तथा ईशानादि कोणों में ठहर जाय तो अशुभ जानना चाहिए। इसके उपरान्त विव्दानों को शुभाशुभ(शकुनादि) पर विचार कर भूमि को समीकृत करने का उपक्रम आरम्भ करना चाहिए। ग्रामादि के लिए साम्प्रादायिकों का मत है कि सूर्योदय काल में जहाँ पर पर्वत की छाया पड़ती हो, ऐसी भूमि ग्राम्यादि के लिए शुभ नहीं होती ।

"मनुष्यालय चन्द्रिका" में कहा गया है कि भगवान विष्णु के मन्दिर के पृष्ठ भाग और बाँयीं ओर तथा कालिका, नरसिंह, शिव तथा अन्य उग्र देवो के प्रासाद के समक्ष और दाँयें यदि गृह का निर्माण किया जाता है तो अनर्थकारी होता है। इसी प्रकार गृह से देवालय नीचे नहीं होना चाहिए, अर्थात गृह को देवालय की ऊँचाई से निम्न बनाया जाना चाहिए। मन्दिरों के सामने एवं दाँयीं ओर निर्माण अशुभ है। जीनका जीवन देवालयाश्रित हो (साधु, वैष्णव, शैव, सन्यासी, पुजारी आदि) उनका निवास नेष्ट स्थान व दिशाओं को छोड़कर वहाँ बनाया जा सकता है। जहाँ व्रीहि-चावल-धान्योत्पादक अथवा संग्रहण क्षेत्र हो, देवालय, समुद्र, नदी, तपस्वियों का क्षेत्र या धूणी-स्थल, गोष्ठ अथवा गोशाला हो-- ऐसे स्थान की भूमि गृहार्थ अनेक दृष्टियों से अशुभ मानी जाती है। जिस भवन की ऊँचाई देवालय की ऊँचाई के समान या न्यून होती है वह बहुत शुभ होता है। देवालय से उन्नत अथवा व्दितलीय भवन देव प्रतिमाओं के सामने या समीपस्थ बनाया जाना अपेक्षित नहीं होता, अर्थात् ऐसा विचार त्याग दिया जाना चाहिए। इस प्रकार हमारे प्रचीन साहित्य में वास्तु का अथाह महासागर विद्यमान है। आवश्यकता है केवल खोजी दृष्टि रखने वाले सजग गोताखोर की जो उस विशाल सागर में अवगाहन कर सत्य के मणिक मोती निकाल सके और उस अमृत प्रसाद को समानरूप से जनसामान्य में वितरित कर सुख और समृध्दि का अप्रतिम भण्डार भेंट कर सकें, तभी वास्तुशास्त्र की सही उपयोगिता होगी ।

हमारे जीवन मे वास्तु का महत्व बहुत ही आवश्यक है । इस विषय में ज्ञान अति आवश्यक है। वास्तु दोष से व्यक्ति के जीवन मे बहुत ही संकट आते हैं। ये समस्याएँ घर की सुख-शान्ति पर प्रभाव डालती हैं। आप निम्न व्यवशायस्थल तथा निवास में परिर्वतन कर लाभ उठा सकते हैं। हमारी भारतीय हिन्दू संस्कृति अपने आप में एक ऐसी विलक्षण संस्कृति रही है, जिसका प्रत्येक सिध्दांत ज्ञान-विज्ञान के किसी न किसी विषय से संबंधित हैं और जिसका एक मात्र उद्देश्य मनुष्य जीवन का कल्याण करना ही रहा है। मनुष्य का सुगमता एवं शीघ्रता से कल्याण कैसे हो? इसका जितना गम्भीर विचार भारतीय संस्कृति में किया गया है। उतना अन्यत्र कही नहीं मिलता। आइए अब विचार करते है कौन से बृक्ष किस दिशा में होने से क्या फल प्राप्त होगा? शास्त्रवचनानुसार यथा--

विप्राणां भूरवागुन्नतधनदनतोदुम्बराद्या शुभा स्यात् ।
प्राङ्निम्ना वारूणोच्चा चलदलसहिता भू: शुभा बाहुजानम् ।
प्रागुच्चाब्धीशनिम्ना वटतरूसहिता भूर्विशां पादजानां सा ।
सप्लक्षा तथाचेद् यमनतधरणी चान्यथा सर्ववर्ज्या: ॥[5]

"मनुष्यालयचन्द्रिका" के रचयिता का मत है कि ब्राह्मण के लिए भूमि दक्षिण दिशा में उन्नत व उत्तर दिशा में झुकी हुई हो तथा वहाँ पर उदुम्बर आदि बृक्ष पूर्व से ही विद्यमान हों। पूर्व दिशा में झुकी हुई और पश्चिम में ऊँची भूमि जहाँ पर पीपल जैसे वृक्ष लगे हों--ऐसी भूमि क्षत्रिय वर्णवालों के लिए शुभ है। वैश्य वर्ग के लिए भूमि पूर्व में ऊँची तथा पश्चिम में अवनत हो और वहाँ पर वटादि वृक्ष पहले से ही होने चाहिए। इसी प्रकार शूद्र वर्ग के लिए ऐसी भूमि होनी चाहिए जो कि दक्षिण में झुकी हुई हो और वहाँ पर प्लक्ष या पाकड़ के वृक्ष होने चाहिए। अन्य प्रकार की भूमि इन सबके लिए वर्ज्य कही गई है ।

आवास के पूर्व में न्यग्रोध या वटवृक्ष, दक्षिण में गुलर या उदुम्बर, पश्चिम में अश्वथ या पीपल और उत्तर में पाकड़ या प्लक्ष का वृक्ष होना शुभकारक है। ईशानशिवगुरूदेव मिश्र का मत है कि न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वथत्थ और प्लक्ष--ये वृक्ष पूर्वादि क्रम से शुभ होते हैं। इसीप्रकार केसर, आम, पुन्नाग, नाग, दाड़िम, पनस, चम्पक, पूग, नारियल के वृक्ष सर्वत्र शोभाजनक होते हैं।

चूँकि पूर्व दिशा में पीपल का पेड़ लगाना वर्जित है। इसी प्रकार दक्षिण में प्लक्ष, पश्चिम में वरगद और उत्तर दिशा में उदुम्बर का पेड़ वर्जित होता है।

विपरीत दिशाओं में वृक्षारोपण से विपरीत फल होता है । पीपल के पेड़ से अग्निभय होता है जब कि प्लक्ष से प्रमाद, बरगद से आयुध का घात और उदुम्बर से उदरव्याधि होती है।

इसी प्रकार गर्ग का मत है कि पूर्व में पीपल से भय, दक्षिण मे पाकड़ से पराजय, पश्चिम में वट से राज पीड़ा, उत्तर में उदुम्बर से नेत्र रोग होने का भय होता है। यथा-

अश्वत्थ: पूर्वतो वर्ज्यो दक्षिणे प्लक्ष एव च ।
न्यग्रोध: पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बर: ॥
अश्वत्थो$ग्निभयं कुर्यात् प्क्ष: कुर्यात् प्रमादकम् ।
न्यग्रोध: शास्त्रसम्पातं कुक्षिरोगमुदुम्बर: ॥6 (वास्तुविद्या श्लोक संख्या ४३, ३५,)

वास्तुशास्त्र को लेकर हर प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है। भूखण्ड एवं भवन के दोषपूर्ण होने पर उसे उचित प्रकार से वास्तुशास्त्र के अनुसार साध्य बनाया जा सकता है। साथ ही वास्तु के निर्माण तथा पूजन के बारे में शास्त्र में इस प्रकार का वचन आया है, यथा--

य: पूजयेव्दास्तुमनन्यभक्त्या न तस्य दु:खं ॥ भवतीह किञ्चित् ।
जीवत्यसौ वर्षशतं सुखेन स्वर्गे नरस्तिष्ठति कल्पमेकम्7

जो मनुष्य अन्य भक्ति से विधिपूर्वक वास्तु का पूजन करता है, उसको (मकान-सम्बन्धि) कोई दु:ख नहीं होते और वह १०० वर्ष तक जीता है एवं १कल्प (४३२०००००००सौरवर्ष) तक स्वर्गवास करता है।

हमने अपने अनुभव में जाना है कि जिन घरों के दक्षिण में कुआ होता है उन घरों के गृहस्वामिनी का असामयिक निधन आकस्मिक रूप से हो गया तथा घर की बहुएं चिरकालीन बिमारी से पीड़ित मिली। जिन घरों या औद्योगिक संस्थानों ने नैरीत्य में बोरिंग या कुआं पाया गया वहां निरन्तर धन नाश होता रहा, वे राजा से रंक बन गये, सुख समृद्धि वहां से दूर रही, औद्योगिक संस्थानों पर ताले लग गये । जिन घरों या संस्थानों के ईशाध कोण कटे अथवा भग्न मिले वहां तो संकट ही संकट पाया गया । यहां तक कि उस गृहस्वामी अथवा उद्योगपति की संतान तक विकलांग पायी गयी।

ग्राम या पुर के (उपलक्षण से घर के) आग्नेय कोण में यदि कूप हो तो वह निरन्तर भय, वायब्य कोण में वनिता को दु:ख देनेवाला होता है। अत: इन तीन दिशाओं को छोड़कर शेष दिशाओं में कुप बनाना उत्तम होता है।

वास्तु के बीचो-बीच कूप बनाने से (या रहने से) धननाश, ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य की वृध्दि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण दिशा में स्त्री का विनाश, नैऋत्य कोण में मृत्यु, पश्चिम दिशा में सम्पत्तिलाभ, वायव्यकोण में शत्रु से पीड़ा और उत्तर दिशा में कूप बनाने से सौख्य होता है। यथा--

कूपे वास्तोर्मध्यदेशे$र्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृध्दि: ।
सूनोर्नाश: स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीड़ा शत्रुत:स्याच्च सौख्यम्॥8

जिध घरों के ईशान कोण में रसोई पायी गयी उन दम्पत्तियों के यहां कन्याओं को जन्म अधिक मिला या फिर वे गृह कलह से त्रस्त मिले। जिन घरों में पश्चिम तल नीचा होता है, तथा पश्चिमी नैऋत्य में मुख्य व्दार होती है, उनके पुत्र मेधावी होने पर भी निकम्मे तथा उल्टी-सीधी बातों में लिप्त मिले हैं। किसी भी स्थान की स्थिति को वास्तु शास्त्र से जाना जा सकता है। अब हम वास्तु सम्बन्धित लोकोपयोगी तथ्य को बताने जा रहें हैं ।

घर की पूर्वदिशा में स्नान घर, तहखाना, बरामदा, कुआँ, बगीचा व पूजाघर बनाया जा सकता है। घर के आग्नेयकोण में रसोईघर, बिजली के मीटर, जेनरेटर, इन्वर्टर व मेन स्वीच लगाया जा सकता है। दक्षिणदिशा में मुख्य शयनकक्ष, भण्डारगृह, सीढ़ियाँ व ऊँचे वृछ लगाये जा सकते है। घर के नैऋत्यकोण में शयनकक्ष, भारी व कम उपयोग के सामान का स्टोर, सीढ़ियाँ, ओवरहेड वाटर टैंक, शौचालय व ऊँचे वृक्ष लगाये जा सकते हैं। घर के वायव्य कोण में अतिथि घर, कुँवारी कन्याओं का शयनकक्ष, रोदनकक्ष, लिविंग रूम, ड्राइंग रूम, सीढ़ियाँ, अन्नभंडार कक्ष, व शौचालय बनाये जा सकते हैं। घर की उत्तर दिशा में कुआँ, तालाब, बगीचा, पूजाघर, तहखाना, स्वागतकक्ष, कोषागार व लिविंग रूम बनाये जा सकते हैं। घर का हल्का सामान उत्तर या पूर्व या ईशान कोण में रखना चाहिए। घर के नैऋत्य कोण में किरायेदार या अतिथियों को नहीं ठहराना चाहिए। सोते समय सिर पूर्व या दक्षिण के तरफ होना चाहिए, अथवा मतान्तर से अपने घर में पूर्व दिशा में शिर करके सोना चाहिए। ससुराल में दक्षिणदिशा की ओर एवं परदेश में पश्चिम की ओर सिर करके सोना चाहिए।

दिन में उत्तर की ओर तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मूत्र का त्याग करना चाहिए। घर के पूजा स्थान में बड़ी मूर्तियां नहीं होनी चाहिए।

घर में दो शिवलिंग, तीन गणेश, दो शंख, दो सूर्यदेव की प्रतिमा, तीन देवी प्रतिमा, दो गोमतीचक्र व दो शालिग्राम नही रखना चाहिए।

घर में भोजन सदैव पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके ही करना चाहिए। सीढ़ियों के निचे पूजाघर, शौचालय व रसोईघर का निर्माण नहीं कराना चाहिए। धन की तिजोरी का मुख उत्तर दिशा में रखना चाहिए। भूखण्ड या भवन यदि दो बड़े भूखण्डो के मध्य हो तो वह अशुभ होता है। आयताकार, वृताकार व गोमुख भूखण्ड गृह-निर्माण के लिए शुभ होता है। वृताकार भूखण्ड में निर्माण भी वृत्ताकार ही होना चाहिए। सिंहमुखी भूखण्ड व्यवसायिक भवन--हेतु शुभ होता है। भुखण्ड के उत्तर या पूर्व में मार्ग शुभ होता है। दक्षिण या पश्चिम में मार्ग व्यापारिक स्थल के लिए शुभ होता हैं । भवन के व्दार के सामने मन्दिर, खम्भा व गढ्ढा अशुभ होते हैं ।

यदि आवासीय परिसर में बेसमेन्ट का निर्माण कराना हो तो उसे उत्तर या पूर्व में ब्रह्मस्थान को बचाते हुए बनाना चाहिए। बेसमेन्ट की ऊँचाई कम से कम ९ फीट की होनी चाहिए तथा वह तल से ३ फीट उपर होना चाहिये, जिससे उसमें प्रकाश और हवा का निर्बाध रूप से आवागमन हो सके ।

कुआँ, बोरिंग व भूमिगत टंकी उत्तर, पूर्व या ईशानकोण में बनानी चाहिए। भवन के प्रत्येक मंजिल के छत की ऊँचाई १२ फीट होनी चाहिए; किन्तु यह १० फीट से कम कथमपि नहीं होनी चाहिए । भवन का दक्षिणी भाग हमेशा उत्तरी भाग से ऊँचा होना चाहिए एवं पश्चिमी भाग हमेशा पूर्वी भाग से ऊँचा होना चाहिए भवन में नैऋत्य सबसे ऊँचा व ईशान सबसे नीचा होना चाहिए।

इस प्रकार भवन निर्माण के उपरान्त देवताओं को धूप इस प्रकार निवेदित करना चाहिए कि वे बहुत धन-धान्यादि प्रदान करें, वे वहाँ पर पूर्व से निवसित भूत, पिशाच, राक्षसों का निवारण करें। वे कीट, भुजङ्ग, मक्खियों, मच्छर चूहों, मकड़ी और चींटियों का निवारण करें। इसके उपरांत तक्षक के साधन को, पश्चिम में रखे गर पात्र को स्पर्श करते हुए धान्य को बिखराएँ तथा सभी को बली सङ्ग्रह के मध्य से यह उच्चारित करते हुए प्रदान करें की-- आप निरोगी हो; मुदित, धन, विशिष्ट यश की वृद्धि करें और महत्त-अद्भुत तेज से युक्त सदा नीरूपद्रव कर्म से युक्त ऐसी भूमि धर्म के अनुरूप सदा ही जीवन्त रखें । यह भवन धारा-निपातादि में गिरने से बचा रहें, जल-प्लावन से, गज की टक्कर और पवन के प्रकोप, अग्निकाण्ड तथा चोरों से सदा ही रक्षित रहें। यह मेरे लिए कल्याणकारक सिद्ध हों। यथा---

उक्त्वैवमेवमखिलान्यपि साधनानि
स्थित्वा प्रणम्य शिरसा स्थपति: कराभ्याम्।
आदाय तानि सकलानि तदीयबाहौ
सम्यङ् निधाय विधिना स्वजनै: सभृत्यै:॥9 (वास्तुविद्या परिशिष्ट प्रकरण श्लोकसं.२४)

यहाँ यह निर्देश है कि स्थपति को स्थिरमना होकर शीर्ष से दोनों ही हाथों को युक्त कर वहाँ समस्त उपस्करकों, साधन को प्रणाम करें। बाद में सभी उपस्कारकों को एकत्रित करें और बिना कोई त्रुटि किए उनको परिवार व सेवक की सहायता से बाहों में उठाएँ अर्थात समस्त औजारों को ले लें। उक्त विधि के साथ-साथ अपने

सभी जनों--भाईयों, पुत्र, सहायक कर्मचारी आदि के सहित अपने भवन को प्रस्थान करें। लौटते समय वह सन्तुष्ट चित्त हो। इसके बाद वहाँ पर बची हुई(पूजा की अन्नादि सामग्री) को एकत्रित कर गृहदेवता के लिए जल में प्रवाहित कर देना चाहिए। (अब पुन: पवित्रीकरण के विषय में कहा जाता है) उक्त पूजादि के बाद समस्तगृह का सम्यक् मार्जन करें। भूमि पर कुष्ठ, अगरू, चन्दन मिला जल छिड़कें। इसीप्रकार कलश के जल, गन्धयुक्तजल, स्वर्ण-मणि मिले जल से भी छिड़काव किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही सिध्दार्थ के प्रयोजन से लाजा, शाल्यादि को भवन में बिखेरना चाहिए। अष्टप्रकार के धान्य, धन, रत्न सहित गृहोपयोगी समस्त वस्तुओं को वहां पर जहां-तहां रखना चाहिए अर्थात भवन में अपना साजो-सामान संग्रह करना शुरु कर देना चाहिए।

इसकेबाद मंङ्गल ध्वन्यादि के बीच, गृहपति को गृहिणी, सुजन, अच्छे सेवकों, सुपुत्रों, अनुज जनों सहित अपने नाना द्रब्य सामग्री से परिपूर्ण भवन में जगत्पति का स्मरण करते हुए प्रवेश करना चाहिए।

अब हम चर्चा करेंगे भवन के आयु का जैसा की ज्योतिष शास्त्र में बताया गया है कि--- सूर्य जब उभय राशिगत (मेषादि से गणना करने पर मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि में) हो तब दिशागत गृहों को नहीं करवाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है तो गृहेश नौकर-चाकर, पुत्रादि सहित काल-विलीन हो जाता है। यथा-

अथ वक्ष्ये गृहारम्भ आयुर्योगं सुखावहम् ।
व्योमपातालगौ चन्द्रगुरु लाभे कुजार्कजौ।।
यस्य यस्य समाशीतियुता लक्ष्मीयुता स्थिति:।
गुरौ लग्नेऽस्तगे सौम्ये शौर्ये मन्दे रिपौ रवौ।।
जले शुक्रे समारब्धं जीवेद् वर्षशतं गृहम् ।
कवौ लग्ने गुरौ पुत्रे रवौ शौर्ये क्षते कुज।
समारब्धं गृहं जीवेद् वत्सराणां शतव्दयम्।।
मूर्तिस्थे तु यदा चन्द्रे जीवे चास्ते बुधे खगे।
षट्शताब्दं समृध्दा: स्युर्गृहग्रामपुरादय:।।
शुक्रे वियति कामे ज्ञे जीवे चास्ते स्थिरे तनौ।
षट्शताब्दं समृध्दा: स्युर्गृहपुरादय:।।
शुक्रे वेश्मनि कामे ज्ञे जीवे स्थिरगृहे सति।
शताष्टकं विवृध्दा: स्युर्देवगेहोपमा गृहा:।।
सूर्योदये गुरौ चास्ते वियतिन्दुसमायुते ।
सहस्राब्दं विवृध्दा: स्युर्देवालयगृहादय: ।।
शुक्रोदये स्मरे जीवे चन्द्रे खे संस्थिते सति ।
सहस्राब्दं समृध्दा: स्युर्देवालयगृहादय:।।
बुधोदये गुरौ चास्ते वियतीन्दुसमायुते ।
सहस्राब्दं समृध्दा: स्युर्देवालयगृहादय: ।।
जीवोदये स्मरे सौम्ये वियतीन्दुसमायुते।
सहस्राब्दं विवृध्दा: स्यु: स्थिरे लग्ने गृहादय:।।[10]

यहाँ ज्योतिषीय मान्यताओं के अनुसार कहा जा रहा है कि यदि कन्या, तुला, वृश्चिक के सूर्य में पश्चिमाभिमुख गृह का कार्य आरम्भ किया जाय तो गृह शुन्य रहेगा, न ही वहाँ स्वामी की कोई बृध्दि होगी। यदि कुम्भ, मकर, धनु के सूर्य में दक्षिणाभिमुख गृह का आरम्भ करवाया जाता है तो कार्य निष्फल होता है और नृप-दण्ड का भय जानना चाहिए। पूर्वाभिमुख गृह का कार्य यदि मीन, वृष, मेषस्थ सूर्य में करवाया जाता है तो धन की हानि, कलह, चोरों सकता भय की आशंका जाननी चाहिए। इसी प्रकार यदि मिथुन, कर्क व सिंहस्थ सूर्य में पश्चिमाभिमुख गृह का कार्य आरम्भ करवाया जाय तो वहाँ दरिद्रता रहती है, स्वामी भी सेवक का आचरण करने पर विवश हो जाता है।

इसलिए यहाँ पर बताया जाता है कि मकर, कुम्भस्थ सूर्य; मेष, वृषगत; कर्क, सिंहगत अथवा तुला, वृश्चिकगत सूर्य हो तब पूर्वादि दिशाभिमुख गृहों का निर्माण करवाना प्रशस्त होता है।

पुनः विशेष रूप से कहा गया है कि मेष, वृष राशिस्थ सूर्य में अन्नालय बनवाएँ। सिंह, कर्क में धान्यगृह; धनु, तुला या मकर या कुम्भ में सुखालय बनवाया जा सकता है। इसीप्रकार "कालप्रकाशिका" में गृहारम्भ काल में ग्रहों की कुण्डलीगत स्थिति देखकर गृहायु पर विचार किया गया है। यदि चौथे स्थान में गुरू; दसवें चन्द्रमा; ग्यारहवें स्थान में मङ्गल एवं शनि होने पर बनवाया गया आवास अस्सी वर्ष तक स्थित रहता है और वहाँ लक्ष्मी की स्थिति रहती है। गुरू लग्न में हो; सातवें में बुध; तीसरे में शनि; छठे में सूर्य एवं चौथे स्थान में शुक्र के रहते आरम्भ किया गया गृह सौ वर्ष की आयु तक स्थिर रहता है। लग्न स्थान में शुक्र; पाचवें में गुरू; तीसरे में सूर्य; छठे स्थान में मङ्गल के रहते आरम्भ हुआ गृह दो सौ वर्ष तक की आयु पूर्ण करता है। प्रथम स्थान में चन्द्रमा हो; गुरू सातवें में और वुध दसवें भवन में हो तो छह सौ साल तक भवन, ग्राम, पुर आदि समृद्धि से भरा-पुरा रहता है। शुक्र वियति या आठवें; बुध सातवें; गुरू अस्त या स्थिर अथवा प्रथम स्थान पर हो तो ऐसे में बनाया गया गृह और बसाया गया पुर आदि छह सौ वर्ष तक समृद्धि पूर्ण रहता है। शुक्र चौथे स्थान में हो; बुध सातवें में और गुरू स्थिर भवन में हो तब बनवाए गए गृह या देवगृह की एक सौ आठ वर्ष तक स्थित रहती है। सूर्य लग्न में हो; गुरू सातवें में और दसवें भवन में चन्द्रमा हो तब बनवाया गया प्रसाद एक हजार वर्ष तक बना रहता है। लग्न में शुक्र हो; सातवें में गुरू एवं चन्द्रमा दसवें भवन में हो, तब बनवाया गया देवगृह और मानव वास आदि एक हजार वर्ष तक समृद्धि को प्राप्त रहते हैं। बुध यदि लग्न में हो; गुरू सातवें एवं दसवें स्थान पर चन्द्रमा हो तब बनवाया गया देवालय और गृह भी हजार वर्ष तक समृद्ध रहता है। गुरू यदि लग्न में हो; सातवें में बुध; दसवें स्थान मे चन्द्रमा हो और स्थिर लग्न हो, तब बनवाया गया गृह भी एक हजार वर्ष तक की आयु प्राप्त करता है।

सन्दर्भ

1. बृहद्वास्तुमाला पृ. २, श्लोक सं. ५
2. बृहद्वास्तुमाला श्लोक सं. ४
3. वास्तुरत्नाकर, भूपरिग्रहप्रकरण श्लोक सं. ७,८
4. वास्तुविद्या पृ. सं.३०
5. मनुष्यालयचन्द्रिका. १, ३०
6. वास्तुविद्या श्लोक संख्या ४३, ३५,
7. वास्तुरत्नाकर, परिशिष्टप्रकरणम् श्लोक संख्या, ६७
8. वास्तुरत्नाकर, जलाशयप्रकरण, श्लोकसंख्या, २१
9. वास्तुविद्या परिशिष्ट प्रकरण श्लोकसं.२४
10. कालप्रकाशिका, अध्याय २५, पृष्ठ १२७